ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 416-418

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

ईशोपनिषद् और श्रीमद् भगवद् गीता में वैचारिक–साम्य

डॉ0 निहारिका चतुर्वेदी

ऐसोसिएट प्रोफेसर– एस0आर0के0 पी0जी कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0), भारत

Received- 09.12.2019, Revised- 14.12.2019, Accepted - 17.12.2019 E-mail: -aaryvart 2013@gmail.com

सारांश : ***प्रस्तुत शोध पत्र में गीता और ईशापनिषद श्रीमद् भगवद् में वैचारिक साम्य का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में यह बताने का प्रयास किया गया है कि कर्मयोग किस तरह से जीवन के आदर्शों को उन्नत बनाने में सार्थक होता है। गीता और ईशोपनिषद दोनों में इस बात का विश्लेषण है कि विज्ञान द्वारा मृत्यु से बचने के उपाय तो मिल सकते है लेकिन अमरता को अध्यात्म ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है।***

कुंजीभूत शब्द– परित्यज्य समष्टि, अध्यात्मिक, प्रतिपाद्य, अपरिहार्य, ईशापनिषद, वैचारिक, सार्थक।

'ईशोपनिषद्' का 'भगवद्गीता' के साथ अति निकट का संबन्ध है। शंकराचार्य ने गीता–भाष्य की भूमिका में 'समस्त वेदार्थ–सार–संग्रह भूतम्' कहकर ईशोपनिषद् और गीता की निकटता को स्वीकारा है। 'गीता' में भी स्वीकारा गया है कि उपनिषदों की गम्भीर तत्वमीमांसा के नैतिक तथा आध्यात्मिक निहितार्थों को प्रकाशित करना ही गीता का उद्देश्य है। श्रीमद् भगवतद् गीता उपनिषद्रूपी पुष्पों का मधु है। सम्पूर्ण उपनिषदें गौ के सदृश है। श्रीकृष्ण दोग्धा हैं, अर्जुन बछड़ा है तथा महान् गीतामृत ही उस गौ का दुग्ध है और शुद्ध बुद्धिवाला श्रेष्ठ मनुष्य ही इसका भोक्ता है।

'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताऽमृतं महत्।।

श्रीमद् गीता का दर्शन यद्यपि औप निषदिक दर्शन पर आधारित है, तथापि सम्पूर्ण गीता ईश उपनिषद् के प्रथम दो मंत्रों की व्याख्या ही मानी जाती है। प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यमिदंसर्व यत्किंच जगत्याम्' तो गीता में प्रतिपादित विशेष तत्वज्ञान का आधार है। ईशोपनिषद् में ईश और जगत् अर्थात् पुरूष और प्रकृति इन दो तत्वों का निरूपण है। ईश में जगत् अनुस्यूत है। सारा जगत् ईश से आवास्य है। समष्टि में ही व्यष्टि समाई हुई है। सब पर उसी ईश का स्वामित्व है। व्यक्तिक स्वामित्व की भावना व्यर्थ है। ब्रह्म या आत्मा एक है। ईशोपनिषद् में वर्णित आत्मा की विशद विवेचना हमें गीता में भी मिलती है। गीता का उद्देश्य है– अर्जुन के मोहान्धकार को दूर करने के लिये उसे आत्मज्ञान प्राप्त कराना और ईश उपनिषद् तो है ही आत्मा की विद्या।

ईशोपनिषद् के प्रथम मन्त्र से अनासक्ति योग का उपदेश ग्रह्य है। 'तेन व्यक्तेन भुञजीथाः' त्याग भाव से भोग करो जब सब कुछ उसी का है, तब सब उसी को समर्पित होना चाहिए। समर्पण योग का यही उपदेश गीता में भी अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा किया गया है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्त पस्यसि कौन्तेय तत् कुरूष्व मदर्पणम्।।

इस प्रकार समर्पण बुद्धि से कर्म करने पर शुभाशुभ फलों वाले कर्मबन्धन से मुक्ति मिल जाती है और सन्यास योग से युक्त आत्मा विमुक्त होकर ईश्वर को प्राप्त हो जाता है। 'सत्यदेव शास्त्री के' विचार में गीता का सोलहवां अध्याय 'तेन व्यक्तेन भुञजीथाः मागृधः कस्य स्विद्धनम् मन्त्र की विस्तृत व्याख्या है। आध्यात्मिंकता और नीति शास्त्र दोनों में त्याग एक चिरन्तन सूक्ति है। त्याग और अनासक्ति द्वारा हम अमृत एवं दिव्य ब्रहम के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं, जो सबकी आत्मा है।

कर्म का अर्थ है– गति या व्यापार जब जीवन सतत् प्रवाहमय है, तब निष्कर्म तो कोई रह भी नहीं सकता है–
न ही कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत

'ईशोपनिषद्' के द्वितीय मन्त्र में 'कर्मयोग' का बीज विद्यमान है। कर्म अपरिहार्य हैं, इसीलिये इस लोक में सौ वर्षों तक तक कर्म करते हुए जाने का आदेश है। जो साधक ज्ञान निष्ठ नहीं है, उनके लिये कर्म बन्धन से मुक्त होने का एकमात्र यही उपाय है गीता में भी कर्मों के महत्व को स्वीकारा गया है, क्योंकि गीता का मुख्य प्रतिपाद्य है कर्मयोग के अभ्यास से निष्पन्न ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति का उपाय बताना। गीता का सिद्धान्त है कि मोक्ष यद्यपि ज्ञान से ही सम्भव है, तथापिमनुष्य क्योंकि कर्म रहित नहीं रह सकता है, इसलिये उसे शरीर–यात्रा–सिद्धयर्थ और लोक संग्रहार्थ कर्तव्य कर्मों को करते रहना चाहिये। गीता में निःश्रेयस् साधन के रूप में ज्ञान की सर्वप्रधानता को मानते हुए भी कर्मों की अवश्य कर्तव्यता का जो प्रतिपादन किया गया है, वह 'ईशोपनिषद् की ही मूल धारणा है। कर्मप्रधान उपनिषदें तो ईश और मुण्डक ही मानी जाती हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने इसी निष्काम कर्म योग को श्रेष्ठ बताया है। निष्काम कर्मयोग के प्रतिपादन के विषय

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

में गीता को 'ईशोपनिषद्' का सर्वाधिक ऋणी माना जाता है। मनुष्य अशुभ कर्मों के फलस्वरूप ही जन्मबंधन में पड़े रहते है। शरीर त्यागानन्तर अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार व्यक्ति विभिन्न योनियों में जाते है। ये योनियाँ अर्थात् जन्म ही विविध लोक है, क्योंकि इनमे जीव अपने कर्म फलों का भोग करता है। आत्मा में अच्छी तरह मरण करने वाले सुर है और इनसे भिन्न असुर हैं। कूकर–शूकर आदि शोक–संतापूर्ण आसुरी योनियाँ और नरक असुरलोक हैं। जन्म और मृत्यु से मुक्ति ही मोक्ष है। आत्मज्ञान द्वारा ही व्यक्ति स्वयं को संसार चक्र से बचा सकता है। ईशोपनिषद् में माना गया है, कि समस्त प्राणियों में एक ही आत्मा है। इस कारण जो व्यक्ति आत्मा के एकत्व को समझता है वहन तो किसी को निंदा करता है, और नही किसी से घृणा ही करता है। गीता में भी यही, विचार व्यक्त किया गया है। जिस ज्ञानी ने सब प्राणियों को अपनी आत्मा में ही अनुभव कर लिया, इस समता भाव को अनुभाव करने की सामर्थ्य अनुशासन द्वारा और आध्यात्मिक साधना द्वारा मानव मन की प्राप्त होती है। 'निर्दोष हिसमं ब्रहम' ब्रहम दोष रहित और सब में समान है। यही भाव गीता में भी व्यक्त किया गया है। जो मनुष्य आत्मा की वास्तविक सत्ता नहीं है, मृत्यु के पश्चात् कभी जन्म नहीं होता है, ऐसा समझते है, वे अज्ञानयुक्त अंधकार में प्रवेश करते हैं, और जो आत्मा ही सब कुछ है, ऐसा मानकर कर्म न करते हुए एकमात्र आत्मज्ञान में ही रत हैं, वे अधिक अज्ञान में प्रवेश करते हैं। परब्रह्म ही आत्मा है।

समस्त प्राणियों और प्रकृति में परिव्याप्त वह आत्मा अचल और कम्पनरहित है। सर्वत्र व्याप्त होने से वह गति में मन से भी अधिक वेगवान है। मन की चंचलता पर नियंत्रण करना असम्भव है। मन संकल्प द्वारा एक क्षण में ही सभी लोकों की यात्रा कर लौट सकता है। मन जहाँ पर भी पहुँचता है, सर्वव्यापक और सर्वगत आत्म तत्व वहाँ पहले से ही विद्यमान होता है और इसीलिये वह द्रुततम मन से भी अधिक तीव्रगामी प्रतीत होता है। वह ब्रहम रूप आत्मतत्व चलता है, और नहीं भी चलता है। वह सगुण साकार रूप में प्रकट होकर लीला किया करता है, यह उसका चलना है और निर्गुण निराकार रूप में वह सदा अचल स्थित है यह उसका न चलना है। आदित्य नक्षत्र आदि के रूप में स्थित होने से ब्रहमदूर है। यही भाव श्रीमद् भगवत् गीता में भी द्रष्टव्य है। जिस प्रकार एक सूत्र में अनेक मणियाँ पिरोयी जाती है, उसी प्रकार अनेक मणियों में एक सूत्र स्थित रहता है, उसी प्रकार सब प्राणियों में एक ही आत्मा है। ज्ञानी के लिये निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध आत्मा के दर्शन के कारण घृणा का कोई निमित्त नहीं रह जाता है। आत्मैकत्व भाव जुगुप्सा घृणा, निन्दा, द्वेष, दया, भय आदि समस्त विकारों को समाप्त कर देता है। जो विद्वान् परमात्मा में ही सब जड़ चेतना को विद्या, योगाभ्यास के बाद देखता है। और जो सब प्रकृत्यदि पदार्थों में सर्वत्र व्यापक परमात्मा को देखता है। तदनन्तर वह सन्देह को प्राप्त नही होता है। यही एकत्व का भाव हमें गीता में भी प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति केवल अविद्यारूप कर्म का ही अनुष्ठान करते हैं वे निरंतर जन्म–मरण के चक्र में फँसे रहते है। आवागमन या संसार प्राप्ति दुख स्वरूप है। यह ज्ञान के अभाव की स्थिति है। इसी से इसको 'घोर तम' कहा गया है। अतः केवल कर्म उपासना करना निन्दनीय है, किन्तु जो मनुष्य कर्म छोड़कर केवल उपासना या देवताज्ञान रूप विद्या में ही अनुरक्त हैं, वे तो उस अंधकार से भी कहीं अधिक तम में प्रविष्ट होते है।

कर्मों का अनुष्ठान न करने के कारण अतः करण की शुद्धि के अभाव में ज्ञानोदय की संभावना ही नहीं रह जाती है। इसीलिये केवल देवताओं के सैद्धान्तिक ज्ञान से सन्तुष्ट रहने वाले जनों की गति अधिक
अंधकारमय है। गीता में भी इसी तथ्य को स्वीकारा गया है। ईशोपनिषद् में वर्णित मंत्र हिरण्य मय पात्र ही गीता की योग माया है।

ईशोपनिषद् में तीन बातें अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रथम यह कि इस विश्व में कर्म करते हुए जीना है परन्तु कर्मफल में बंधना नहीं है यही गीता का प्रमुख निष्काम कर्म योग तत्व है। द्वितीय यह कि अविद्या से केवल मृत्यु से तर सकते है, किन्तु अमृत नहीं प्राप्त कर करते हैं। विज्ञान द्वारा मृत्यु से बचने के उपाय तो मिल सकते हैं किन्तु अमरता तो अध्यात्म ज्ञान से ही प्राप्त होती है, और यही वास्तविक विद्या है। तृतीय यह है कि व्यक्तिवाद असम्भूति से मनुष्य केवल मृत्यु से बच सकता है। किन्तु अमरता प्राप्त करने के लिये समष्टि सम्भूति में अपने को समर्पित करना होगा। गीता में भी कहा गया है।

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण ब्रज।
अहं त्वाम् सर्व पापेभ्योः मोक्षयिष्यामि।।

गीता में भी अठारह अध्याय हैं और ईशोपनिषद् में भी 18 मंत्र ही है। रघ्रामानुज का मानना है किसंपूर्ण गीता ईशउपनिषद् के अठारह मंत्रो का ही विस्तार है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मतः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे माणिगणा इव।।
गीता 7/7.

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-11, No.-II, Issues-14 YEAR- Dec. -2019

2. ईशावास्य रहस्य, पण्डित सत्यदेव शास्त्री पृ0सं0 13.
3. गीता 3/5.
4. The ten Classical Up anisads Vol/P.N32
5. सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावु भौ।
तयोस्तु कर्म सन्यासत्कर्मयोगों विशिष्यते।।
गीता 5/2.
6. आसुरीं योनिमापन्ना मूढाजन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेव ततोयान्ति अधमांगतिम्।।
श्रीमद् भगवत् गीता 16/20.
7. यो मां पश्यति सर्वं च मयि पश्चति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच में न प्रणश्यति।
गीता 6/30.
8. असंशयं महाबाहो मनो दुनिग्रहं चलम्।
गीता 6/35.
9. बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्षमत्वात् तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके तत्।।
गीता 13/15.
10. श्रीमद् भगवद् गीता 6/30.
11. श्रीमद् भगवद् गीता 16/20.
12. Sankara and madhva on the isavasya upanisad K.B Archak, Dharwad 1981 P.N 6.

*****